(Types of knowledge)

(1) **प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित ज्ञान–** (A priori and Empirical or A posteriori knowledge)

(2) **विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्ति** (Analytic and Synthetic Propositions)

भूमिका– दर्शनशास्त्र में तथा आधुनिक तर्कशास्त्र में भी ज्ञान के दो प्रकारों प्रागनुभविक तथा आनुभविक ज्ञान का बड़ा महत्व है। दर्शनशास्त्र में इस महत्वपूर्ण विषय को कान्ट ने बड़े ही प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किया है। 'प्रागनुभविक' तथा 'आनुभविक' अवधारणाएँ तर्कशास्त्रीय अवधारणाएँ हैं। इनका प्रयोग प्रतिज्ञप्तियों (Propositions) और प्रकथनों (Statements) के रूप में होता है। अर्थात कुछ कथन प्रागनुभविक और कुछ आनुभविक होते हैं। प्रकथनों का यह प्रकार इस बात पर निर्भर है कि उन प्रकथनों की सत्यता का ज्ञान किस प्रकार होता है- प्रागनुभविक रूप में (अनुभव पूर्व) या आनुभविक रूप में (अनुभव के द्वारा)?

प्रागनुभविक तथा आनुभविक प्रकथनों के अतिरिक्त एक भेद और भी किया जाता है, वह है– विश्लेषणात्मक (Analytic) और 2. संश्लेषणात्मक (Synthetic)। इस प्रकार का भेद कान्ट द्वारा प्रभावकारी ढंग से किया गया। कान्ट ने प्रकथन या तर्क वाक्य (Proposition) के स्थान पर 'निर्णय' (Judgment) कहा है।[1] कान्ट के इस वर्गीकरण का दर्शन तथा आधुनिक तर्कशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। कान्ट का वर्गीकरण इस प्रकार है–

वाक्य (Judgment)

- विश्लेषणात्मक (Analytic)
- संश्लेषणात्मक (Synthetic)
  - आनुभाविक (A posteriori)
  - प्रागनुभविक (A priori)

प्रकथनों या ज्ञान के इन प्रकारों की व्याख्या निम्नलिखित रूपों में की जा सकती है।

(1) प्रागनुभविक तथा आनुभविक ज्ञान (A priori and A posteriori knowledge) या प्रतिज्ञप्ति (Proposition)–

प्रागनुभविक का अर्थ है 'अनुभव से पूर्व'– अर्थात् ऐसी प्रतिज्ञप्ति या प्रकथन प्रागनुभविक

1. ए० जे० एअर – भाषा, सत्य और तर्कशास्त्र पृ. 66

Scanned by TapScanner

कहा जाता है, जिसकी सत्यता के ज्ञान के लिए हमें अनुभव का सहारा नहीं लेना पड़ता। एक लेखक के अनुसार प्रागनुभविक कथन ऐसे ज्ञान की ओर संकेत करता है जो स्वतः प्रमाणित है। इसे किसी प्रमाण, अनुभव या निरीक्षण की आवश्यकता नहीं, इसके विपरीत आनुभविक कथन ऐसे सत्य के ज्ञान के लिए संकेत करता है, जिसके लिए अनुभव और निरीक्षण आवश्यक होता है। आनुभविक ज्ञान का अर्थ ही होता है – वह ज्ञान जिसका समर्थन अनुभव द्वारा किया जा सकता हो।[1] ए. जे. बाम ने उद्धरण देते हुए आनुभविक तथा प्रागनुभविक ज्ञान का परिचय इस प्रकार दिया है– ''ऐसे ज्ञान का अस्तित्व, जो अनुभव यहाँ तक कि इन्द्रिय संवेदन (Impression) से भी स्वतन्त्र है, ऐसे ज्ञान को प्रागनुभविक ज्ञान कहते हैं। आनुभविक ज्ञान प्रागनुभविक ज्ञान से भिन्न है। इसका स्रोत अनुभव (Experience) है। दूसरे शब्दों में प्रागनुभविक ज्ञान अनुभव से पूर्व का ज्ञान है, जबकि आनुभविक ज्ञान अनुभव के बाद का ज्ञान है।''[2]

जॉन हास्पर्स ने अपनी पुस्तक 'दार्शनिक विश्लेषण परिचय' में प्रागनुभविक तथा आनुभविक प्रतिज्ञप्ति (ज्ञान) की विस्तृत व्याख्या करते हुए इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट किया है। उनके शब्दों में प्रागनुभविक (A priori) की परिभाषा इस प्रकार की गयी है– ''प्रागनुभविक कथन-अर्थात वह जिसकी सत्यता प्रागनुभविक रूप से जानी जा सकती है– ऐसा होता है कि और अधिक अनुभव से उसके सत्यापन की जरूरत नहीं होती। हम जान लेते हैं कि वह सर्वदा और सर्वत्र सत्य है और इसके लिए जिन विविध उदाहरणों पर वह लागू होता है, उनकी हमें जाँच नहीं करनी पड़ती है।''[3] इसके विपरीत वह कथन जिसकी सत्यता का ज्ञान अनुभव से होता है, आनुभविक कथन (ज्ञान) कहलाता है।

आनुभविक या अनुभवाश्रित (A posteriori) प्रतिज्ञप्ति– इसकी परिभाषा हास्पर्स ने इस प्रकार दी है– ''इनके (प्रागनुभविक कथनों के) विपरीत अन्य प्रतिज्ञप्तियाँ हैं जो सत्य हैं, 'केवल सत्य हैं''– उनके सम्बन्ध में कोई अनिवार्यता नहीं होती, --- ये केवल आकास्मिक रूप से सत्य हैं– इनकी सत्यता, दुनिया में जिस रूप में बनी हुयी है, उस पर आश्रित है। इनका निषेध आपातिक (आकस्मिक) रूप से असत्य होगा। इन सबको हम आपातिक (आकस्मिक) प्रतिज्ञप्तियाँ कहते हैं।

उदाहरणों सहित परिभाषाओं की व्याख्या–

(1) प्रागनुभविक– जैसाकि हास्पर्स ने प्रागनुभविक प्रकथन की परिभाषा दी है, उसके अनुसार इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती हैं– (अ) प्रागनुभविक कथन वह है, जिसकी सत्यता प्रागनुभविक (अनुभव से पूर्व) रूप से जानी जाती है। अर्थात् इसके

सत्यापन के लिए अनुभव की आवश्यकता नहीं होती। (ब) दूसरी विशेषता यह है कि ऐसे कथन सर्वदा और सर्वत्र सत्य होते हैं। (स) तीसरी बात यह है कि इसकी (उदाहरणों की) हमें जाँच करने की आवश्यकता नहीं होती है कि वह सत्य है या नहीं। उदाहरण के लिए "कोई (व्यक्ति) एक ही समय में दो भिन्न स्थानों में नहीं हो सकता", "जिसकी शक्ल होती है उसका परिमाण भी होता है" या "यदि एक घटना दूसरी घटना की पूर्ववर्ती है और दूसरी तीसरी की पूर्ववर्ती, तो पहली, तीसरी की पूर्ववर्ती है[1] प्रागनुभविक प्रकथन के विषय में हास्पर्स का कहना है कि "कुछ प्रतिज्ञप्तियाँ ऐसी होती हैं कि जब हम उन पर विचार करते हैं तब वे अनिवार्यतः सत्य लगती हैं– उनका असत्य होना संभव ही नहीं होता– और कुछ अनिवार्यतः असत्य लगती हैं– उनका सत्य होना संभव नहीं होता।.....इन्हें (ऊपर के उदाहरणों को) अनिवार्य रूप से सत्य कहने का मन होता है। हम इनकी जाँच करने का कष्ट तक करने की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि वे अनिवार्य सत्य हैं– (सभी संभव जगतों में ये सत्य होंगे।) इन्हें हम अनिवार्यतः सत्य कहते हैं और इनके निषेध अनिवार्यतः असत्य हैं।"[2]

प्रागनुभविक कथन में अनिवार्य सत्य अनिवार्य होते हैं, क्योंकि उन्हें प्रागनुभविक रूप से जाना जा सकता है– प्रागनुभविक कथन के विषय में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठाते हैं कि "वह क्या बात है जिससे अनिवार्य सत्य अनिवार्य होते हैं?" इसके उत्तर में उनका कहना है कि "बात यह है कि उन्हें प्रागनुभविक रूप से जाना जा सकता है। असल में 'अनिवार्य सत्य' कहना और 'प्रागनुभविक रूप से ज्ञात हो सकने वाला सत्य' कहना बिल्कुल एक बात है। वे सत्य प्रागनुभविक रूप से सत्य ज्ञात हो सकने वाले इसलिए हैं कि वे आज, कल या आज से लाखों वर्ष बाद भी सभी प्रसंगों में अनिवार्यतः लागू होते हैं। यदि कोई दिल्ली में है तो हमें यह जाँच करके पता लगाने की जरूरत नहीं है कि वह कलकत्ता में नहीं है। यदि हम जानते हैं कि कोई चीज लाल है तो आगे हमें जाँच करके यह पता लगाने की जरूरत नहीं है कि वह रंगहीन है। यदि कोई ऐसा कथन है जिसकी हमें यह देखने के लिए परीक्षा करनी पड़े कि भावी प्रसंगों में वह सत्य निकलता है या नहीं, तो वह आपातिक (आकस्मिक) कथन है, जिसका ज्ञान केवल अनुभव-सापेक्ष होता है।" हास्पर्स के इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि प्रागनुभविक कथन में अनिवार्य सत्य अनिवार्य होते हैं। उन्हें प्रागनुभविक रूप से जाना जा सकता है। अर्थात् उन कथनों की जाँच नहीं करनी पड़ती। इसके विपरीत जिन कथनों की जाँच करनी पड़े कि वह आगे सत्य निकलता है कि नहीं, वह अनुभव-सापेक्ष रूप से ही सत्य जाना जा सकता है।

(2) आनुभविक या अनुभव सापेक्ष (A posteriori) **प्रतिज्ञप्ति–** हास्पर्स ने आनुभविक या अनुभव सापेक्ष प्रतिज्ञप्ति की जो परिभाषा दी है यदि उसकी उदाहरणों सहित व्याख्या की जाय तो यह स्पष्ट होता है कि ऐसे कथन अनुभव सापेक्ष होते हैं। अर्थात् इनके सत्य में कोई अनिवार्यता नहीं होती। इसकी विशेषता यह है कि (1) इनके सत्य का ज्ञान अनुभव पर आधारित होता है। (2) इनके सत्य में कोई अनिवार्यता नहीं होती। (3) इनका सत्य आपातिक अर्थात् आकस्मिक होता है। दूसरे शब्दों में इनका सत्य कभी सत्य होता है और कभी नहीं। जैसे –"इस कमरे में छः आदमी हैं"। "कुछ कुत्ते सफेद होते हैं"। "आदमी उतने तेज नहीं दौड़ सकते, जितने खरगोश' आदि। इन कथनों को आकस्मिक रूप से सत्य कहा जा सकता है। इनका निषेध आकस्मिक रूप से असत्य होगा। इनको हम आनुभविक या अनुभव सापेक्ष

1. इसका अन्य उदाहरण – "राम श्याम से बड़ा है, श्याम मोहन से बड़ा है, अतः राम मोहन से बड़ा है"

Scanned by TapScanner

प्रतिज्ञप्ति कहते हैं। एक अन्य उदाहरण लें। जैसे –"कुछ गुलाब सफेद हैं", इसकी सत्यता का ज्ञान अनुभव द्वारा होता है। इसी तरह कुछ 'कुत्ते सफेद होते हैं', इसके ज्ञान के लिए अनुभव की आवश्यकता है। इसमें अनिवार्यता नहीं है कि कुत्ते सफेद ही होते हैं। "कुछ कुत्ते काले भी होते हैं"। अतः आनुभविक कथन का ज्ञान अनुभव से होता है, इसके सत्य में अनिवार्यता नहीं होती। अर्थात् इसका सत्य आकस्मिक होता है।

प्रकृति की एकरूपता (uniformity of nature), **अनिवार्य सत्य और आनुभविक या अनुभव सापेक्ष** (A posteriori) **प्रतिज्ञप्ति** –हास्पर्स ने प्रकृति की एकरूपताओं को व्यक्त करने वाले उदाहरणों (कथनों) को देते हुए यह प्रश्न उठाया है कि क्या ये कथन अनिवार्यतः सत्य हैं? जैसे 'पानी 212^0 फा० पर खौलता है', 'पानी नीचे की ओर बहता है', आदि। प्रकृति की एकरूपता का अर्थ है –'समान अवस्थाओं में प्रकृति समान प्रकार से व्यवहार करती है।' यदि किसी परिस्थिति में, अतीत में पानी पीने से प्यास बुझी थी, या अग्नि से हम जले थे, तो वैसी ही परिस्थिति में आगे अर्थात् भविष्य में भी पानी से प्यास बुझेगी और अग्नि हमें जलाएगी। अर्थात् प्रकृति अनियमित कार्य नहीं करती। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो सकता है कि इनकी (इन उदाहरणों की) सत्यता हम जानते हैं। इनकी सत्यता की परीक्षा के लिए अनुभव का सहारा लेना आवश्यक नहीं है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। ये सारे कथन अनिवार्यतः सत्य नहीं हैं। इस विषय में हास्पर्स का यह मत महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि "पहले शायद हम यह कहना चाहेंगे कि वे अनिवार्यतः सत्य हैं", हम इन एकरूपताओं से इतने अधिक परिचित हैं कि हम इन्हें स्वतः सत्य मानने लगे हैं। पर जरा सोचिए ये सब प्रकृति में पायी जाने वाली एकरूपताओं के कथन हैं। क्या इस बात की कोई गारन्टी है कि जो एकरूपता कल थी, और आज है, वह कल भी या उसके बाद भी हमेशा बनी रहेगी? क्या कल फिर हमें यह देखने की जरूरत नहीं होगी कि प्रकृति का व्यवहार वही रहता है या नहीं जो आज है? जिन्हें हम प्रकृति की एकरूपताएँ समझते थे, वे बाद की जाँच-पड़ताल से अनेक बार वैसे नहीं निकलीं। ऐसा पाया गया कि **एकरूपता के अपवाद हैं** या वह केवल कुछ शर्तों के साथ सत्य है। अनुभव के जाँचने पर यह पाया गया कि जैसा पहले कहा गया था उस रूप में वह सत्य नहीं है।"[1] इससे यही सिद्ध होता है कि प्रकृति की एकरूपता को भी सिद्ध करने के लिए कि उसकी एकरूपता आगे बनी रहेगी, प्रकृति का और भी अधिक निरीक्षण (अनुभव) करना पड़ेगा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि आनुभविक सत्य (कथन) आकस्मिक है, अनिवार्य नहीं है। चूँकि ये कथन अनुभव पर आश्रित हैं इसलिए इन्हें आनुभविक प्रतिज्ञप्ति (कथन) की संज्ञा दी जाती है।

प्रागनुभविक तथा आनुभविक ज्ञान में अन्तर – एक तुलना – इन दोनों प्रकथनों की परिभाषा और उसकी व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि प्रागनुभविक प्रतिज्ञप्ति (कथनों) में अनिवार्यता होती है। ऐसे कथन अनिवार्य रूप से सत्य होते हैं। इनके सत्य की जाँच के लिए अनुभव का सहारा नहीं लेना पड़ता। दूसरी ओर आनुभविक या अनुभव सापेक्ष कथन अनिवार्य रूप से सत्य नहीं होते। इनके सत्य आकस्मिक (contingent) होते हैं अर्थात् इनके कथन सत्य भी हो सकते हैं और असत्य भी। इनकी सत्यता और असत्यता में कोई अनिवार्यता नहीं होती है। अनुभव से ही ज्ञात होता है कि वे सत्य हैं या असत्य। कान्ट ने प्रागनुभविक कथन की विशेषता में अनिवार्यता के अतिरिक्त सार्वभौमिकता का भी उल्लेख किया है।

अर्थात् जो कथन अनिवार्य रूप से सत्य होगा वह सब कालों और स्थानों में, संभव विश्व के लिए सत्य होगा। वह सार्वभौमिक रूप से सत्य होगा। इसके विपरीत आनुभविक या अनुभवाश्रित कथनों में सार्वभौमिकता नहीं होती। इसकी सत्यता चूँकि आकस्मिक होती है, इसलिए इसमें सार्वभौमिकता का होना संभव ही नहीं है। ऐसे कथन तो कुछ निश्चित अनुभव की स्थितियों में ही सत्य होते हैं। सदा और सभी स्थितियों में सत्य नहीं होते। सारांश में इन दोनों प्रकार के कथनों का अन्तर निम्नलिखित रूप में है– प्रागनुभविक कथन–अनुभवपूर्ण, अनिवार्य और सार्वभौमिक होते हैं और अनुभवाश्रित या आनुभविक कथन–अनुभव पर आश्रित, आकस्मिक (सार्वभौमिक नहीं) सत्य होते हैं।

Scanned by TapScanner

find out whether the statement always holds true.

2. प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित ज्ञान

उपर्युक्त प्रकार के भ्रम में पड़ने की आशंका और अधिक तब हो जाती है जब 'प्रागनुभविक' तथा 'अनुभवाश्रित' शब्दों का प्रयोग प्रतिज्ञप्तियों या कथनों के सन्दर्भ में न कर ज्ञान के सन्दर्भ में किया जाय। ऐसे प्रयोग में किसी भूल या अनौचित्य का प्रश्न नहीं है, ऐसा प्रयोग किया जा सकता है और किया जाता है। 'प्रागनुभविक' तथा 'अनुभवाश्रित' ज्ञान के भी विशेषणों के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। प्रतिज्ञप्तियाँ आखिर ज्ञान की अभिव्यक्ति की ही इकाइयाँ हैं, अथया यों कहें कि हमारे ज्ञान की अभिव्यक्ति प्रतिज्ञप्तियों के माध्यम से ही होती है। इसीलिए चाहे हम यह कहें कि 'लाल वस्तु लाल है' प्रतिज्ञप्ति प्रागनुभविक हैं अथवा यह कहें कि हमारा यह ज्ञान प्रागनुभविक है कि लाल वस्तु लाल है, दोनों एक ही बात है। परन्तु यहाँ पर समझना आवश्यक है कि उपर्युक्त ज्ञान किस अर्थ में प्रागनुभविक है। 'प्रागनुभविक' तथा 'अनुभवाश्रित' शब्दों से तो स्वाभाविक रूप से यह भ्रम होता है कि जो ज्ञान अनुभव पर आधारित नहीं है अथवा जो ज्ञान किसी भी अनुभव के पूर्व से (प्राक्-अनुभविक) हमारे अन्दर विद्यमान है वह प्रागनुभविक है तथा जो ज्ञान अनुभव के द्वारा प्राप्त होता है वह अनुभवाश्रित है। पर यहाँ जिस अर्थ में हम प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित ज्ञान की चर्चा कर रहे हैं और सचमुच जिस अर्थ में समसामयिक विचारकों ने इसका प्रयोग किया है उसमें ऐसा नहीं है। यहाँ हम प्रागनुभविक ज्ञान से वह ज्ञान समझ रहे हैं जिसकी सत्यता की जाँच एक प्रागनुभविक रूप में यानी अनुभव का बिना सहारा लिये होती हैं और अनुभवाश्रित ज्ञान वह ज्ञान है जिसकी सत्यता निश्चित करने के लिए हमें अनुभव प्रागनुभविक रूप में होता है, इसलिए यह प्रागनुभविक ज्ञान का उदाहरण है तथा चूँकि 'कुछ गुलाब लाल हैं' प्रतिज्ञप्ति की सत्यता का ज्ञान हमें अनुभव की दुनिया में जाकर जाँच करने के बाद होता है, इसलिए वह ज्ञान अनुभवाश्रित ज्ञान है। इसी भेद को ध्यान में रखते हुए

रसेल (Russell) प्रागनुभविक ज्ञान के स्वरूप के विषय में कहते हैं कि यद्यपि सभी प्रकार के ज्ञान की उत्पत्ति में किसी-न-किसी रूप में अनुभव का हाथ होता है (जैसा हमने भी ऊपर देखा है), तथापि किसी ज्ञान को प्रागनुभविक कहने का हमारा तात्पर्य है कि जो अनुभव उसकी उत्पत्ति में किसी-न-किसी प्रकार सहायक होता है वह उसकी सत्यता प्रमाणित नहीं करता, बल्कि हमारे ध्यान को कुछ इस प्रकार दिशा देता है कि बिना किसी अनुभव का सहारा लिये हम उसकी सत्यता का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। ***रसेल*** के अपने शब्द इस संबंध में इस प्रकार है – *"While admitting that all knowledge is elicited and caused by experience, we shall nevertheless hold that some knolwedge is a* ***priori*** *in the sense that the experience which makes us think of it does not suffice to prove it, but merely so directs our attention that we see its truth without requiring any proof from experience."*[1] अतः स्पष्टतः यहाँ प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित ज्ञान में भेद का आधार यह नहीं है कि पहले प्रकार का ज्ञान हमें किसी भी प्रकार के अनुभव के पूर्व से रहता है तथा दूसरे प्रकार का ज्ञान हम अनुभव से प्राप्त करते हैं, बल्कि आधार यह है कि उनकी सत्यता की जाँच कैसे होती है।

कान्ट (Kant) ने प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित ज्ञान का भेद कुछ इस प्रकार किया है कि उससे यह अवश्य लगता है कि प्रागनुभविक ज्ञान किसी भी अनुभव के पूर्व से प्राप्त ज्ञान है और अनुभवाश्रित ज्ञान अनुभ्पव के माध्यम से प्राप्त है। ***कान्ट*** के अपने शब्द इस संबंध में इस प्रकार है – "....... *We shall understand by a* ***priori*** *knowledge, not knolwedge independent of this or that experience, but knowledge absolutely independent of all experience. Opposed to it is empirical knowledge, which is knowledge possible only a* ***posteriori,*** *that is, through experience."*[2] *कान्ट* के इस प्रकार भेद करने का कारण यह है कि वे संसार के हमारे ज्ञान में दो प्रकार के तत्त्वों को सम्मिलित मानते हैं – (1)एक वे जो प्रागनुभविक रूप से यानी किसी अनुभव के पूर्व से हमारे मन में दिये हुए हैं और (2) दूसरे वे जो वाह्य जगत से इन्द्रियों के माध्यम से हमें प्राप्त होते हैं। पहले के अन्तर्गत दिक् तथा काल नामक प्रत्यक्ष के दो आकार तथा बुद्धि की बारह कोटियाँ (Categories) आती हैं जिनमें कारणता (Causality) भी सम्मिलित है। *कान्ट* के अनुसार मन के इन आकारों तथा कोटियों का ज्ञान हमें प्रागनुभविक रूप में होता है, चूँकि वे किसी भी अनुभव के परे हैं और अनुभव द्वारा प्राप्त संसार संबंधी हमारे ज्ञान की अनिवार्य शर्तें हैं। दिक् तथा काल के हमारे प्रागनुभविक ज्ञान के ही ये उदाहरण हैं कि एक प्रागनुभविक रूप में हम यह जानते हैं कि यदि A B के पूरब है और B C के पूरब है, तो A C के पूरब है अथवा यदि A B के पहले आता है और B C के पहले आता है, तो A C के पहले आता है। यानी *कान्ट* के अनुसार दूरी, फैलाव, दिशा, पहले-पीछे, अभी-बाद जैसे हमारे ज्ञान प्रागनुभविक ज्ञान है, चूँकि ये किसी भी अनुभव के पूर्व से हमारे अन्दर विद्यमान रहते हैं और किसी भी आनुभविक ज्ञान के पूर्वाधार हैं। उसी प्रकार यह वस्तु या घटना उस वस्तु या घटना का कारण है, इसका ज्ञान तो हमें अनुभव द्वारा प्राप्त होता है, पर इस बात का हमारा ज्ञान प्रागनुभविक है कि हर घटना का कोई-न-कोई कारण होता

है। फिर 'यह एक वृक्ष है', 'कुछ मनुष्य ईमानदार होते हैं' आदि प्रतिज्ञप्तियों का ज्ञान अनुभवाश्रित है चूँकि उनका ज्ञान अनुभव के बाद ही हमें होता है। पहले दिक् तथा काल नामक प्रत्यक्ष के प्रागनुभविक आकारों के माध्यम से हमें वाह्य जगत में इन्द्रियानुभव प्राप्त होते हैं और तब फिर हमारे मन में ही प्रागनुभविक रूप से मौजूद विचार की कोटियों को उनपर लागू कर उपर्युक्त प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों (*कान्ट* की भाषा में निर्णय यानी Judgement) का निर्माण होता है। इसलिए इन प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता का हमारा ज्ञान अनुभवाश्रित है।

इस तरह उपर्युक्त रूप में प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित ज्ञान का भेद करने का *कान्ट* का अपना आधार है। हम इसकी आलोचना कर सकते हैं तथा आधुनिक अनुभववादी आलोचना करते भी हैं। उनका कहना है कि अनुभव के एक सामान्य आधार के बिना किसी भी प्रकार का ज्ञान संभव नहीं है। *कान्ट* का यह मानना कि प्रागनुभविक ज्ञान हमारे मन या विचार तक सीमति होता है एक रूढ़िवादिता का परिचायक है। उन्होंने एक हठवादी या रूढ़िवादी (dogmatic) ढंग से यह मान लिया है कि हमारे मन के गठन में हीं प्रागनुभविक रूप में प्रत्यक्ष के दो आकार तथा विचार की बारह कोटियाँ हैं जिनके माध्यम से संसार का ज्ञान हमें होता है। परन्तु इस पूर्वमान्यता का एक हठवादिता के अलावा और क्या आधार हो सकता है ? *रसेल* इस संबंध में कहते हैं कि मनुष्य भी प्रकृति या संसार का उसी प्रकार एक तथ्य है जैसे अन्य पदार्थ या जीव-जन्तु, तो इस बात की क्या गारन्टी है कि समय पाकर उसके स्वरूप में भी परिवर्तन न हो जाय और उसके मन का गठन वैसा ही नहीं रहे जैसा *कान्ट* मानते हैं। और तब *कान्ट* की मान्यता पर 2 +2 = 4 जैसी गणित की प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य नहीं होगी चूँकि वे तो हमारे मन के गठन में ही निहित दिक् तथा काल जैसे प्रत्यक्ष के प्रागनुभविक आधारों पर आश्रित हैं। ***रसेल*** के शब्दों में – *"Our nature is as much a fact of existing world as anything, and there can be no certainty that it will remain constant. It might happen, if Kant is right, that tomorrow our nature would so change as to make two and two become five."* [1] इसलिए उनका विचार है कि 2 +2 = 4 जैसी गणितिक प्रतिज्ञप्तियों का हमारा ज्ञान जो प्रागनुभविक ज्ञान का उदाहरण है हमारे मन के गठन पर आश्रित नहीं हो सकता और सिर्फ उसी से संबंधित नहीं हो सकता। उसका संबंध वास्तविक संसार से भी होगा, जिसमें मानसिक तथा गैरमानसिक सभी प्रकार के तत्त्व है। जैसे वे खुद कहते हैं – *"When we judge that two and two are four, we are not making a judgement about our thoughts, but about all actual or possible couples .... Thus our a priori knowledge, if it is not erroenous, is not merely knowledge about the constitution of our minds, but is applicable to whatever the world may contain, both what is mental and what is non-mental."* [2]

इन सारी बातों के मूल में यह दृष्टिकोण है कि अनुभव से बिलकुल निरपेक्ष कोई ज्ञान नहीं होता। दिक्, काल तथा कारणता से संबंधित जिन कुछ उपर्युक्त प्रतिज्ञप्तियों के ज्ञान को *कान्ट* ने प्रागनुभविक अथवा अनुभवनिरपेक्ष बताया है, वह भी सचमुच वैसा नहीं है। यानी, ऐसा नहीं है कि दिक् और काल के प्रागनुभविक रूप में हमारे अन्दर मौजूद होने से हमें

अगल-बगल, आगे-पीछे, अभी-बांद आदि दिक् या काल संबंधी ज्ञान है, बल्कि वास्तविकता यह है कि अनुभव में अगल-बगल, अभी-बाद आदि का ज्ञान होने से उसके आधार पर दिक् तथा काल का ज्ञान होता है। यही बात कारणता के संबंध में भी लागू है। कारणता की अवधारणा कोई अनुभवनिरपेक्ष अवधारणा नहीं है।

अतः प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रिता ज्ञान का भेद इस आधार पर नहीं हो सकता कि कौन-सा ज्ञान बिलकुल अनुभ्पव निरपेक्ष है तथा कौन अनुभव पर आश्रित है। बिलकुल अनुभव निरपेक्ष ज्ञान हो ही नहीं सकता। इस अनुभववादी दृष्टिकोण को ***जॉन हॉस्पर्स*** ने अपनी निम्नांकित पंक्तियों में बड़े स्पष्ट ढंग से रखा है – *"It is clear that chrnologically no body knows anything prior to all experience. your experience began even before you were born at a time when you can hardly be said to have known anything. Surely all knowledge comes posterior to experience, in the sense that if you had experienced nothing there would be nothing you could knows. So how could anyone seriously suggest that nything can be known absolutely a priori ?"* [1] अतः किसी ज्ञान के प्रागनुभविक होने की पहचान यह है कि **उसकी** सत्यता का ज्ञान हमें एक प्रागनुभविक रूप में यानी बिना किसी अनुभव का बार-बार **सहारा** लिये होता है तथा अनुभवाश्रित ज्ञान की पहचान यह है कि उसकी सत्यता के लिए **हमें** आवश्यक रूप से अनुभव का सहारा लेना पड़ता है।

3. प्रागनुभविक तथा अनुभवाश्रित सत्य

'प्रागनुभविक' तथा '**अनुभवाश्रित**' अवधारणाओं का प्रयोग सिर्फ प्रतिज्ञप्तियों तथा ज्ञान के ही सन्दर्भ में नहीं, बल्कि **सत्य के** सन्दर्भ में भी हो सकता है। दूसरे शब्दो में, प्रागनुभविक प्रतिज्ञप्ति, प्रागनुभविक ज्ञान की तरह प्रागनुभविक सत्य (A priori truth) की भी बात हम कर सकते हैं और उसी प्रकार अनुभवाश्रित सत्य (A posteriori truth) की भी बात हम कर सकते हैं और ठीक से विचार करने पर हम देखेंगे कि जिसे हम प्रागनुभविक सत्य कहेंगे वह ऊपर विश्लेषित प्रागनुभविक कथन अथवा प्रागनुभविक ज्ञान की धारणा से ही सम्बद्ध है। किसी भी कथन के बारे में हमारा यह कहना कि वह प्रागनुभविक है यह कहने के बराबर है कि वह एक प्रागनुभविक सत्य व्यक्त करता है, यानी ऐसा सत्य व्यक्त करता है जिसके अनुभव के द्वारा सत्यापन की कोई आवश्यकता नहीं है। उसी प्रकार किसी ज्ञान को प्रागनुभविक कहने का वही अर्थ है जो अर्थ यह कहने का है कि उस ज्ञान में निहित सत्य प्रागनुभविक है। हम कह सकते हैं कि प्रागनुभविक सत्य अनुभव-निरपेक्ष रूप में ज्ञातव्य सत्य (Truth knowable a priori) है, यानी वह सत्य है जिसके ज्ञान के लिए बार-बार अनुभव का सहारा नहीं लेना पड़े। इसके विपरीत अनुभवाश्रित सत्य अनुभव के द्वारा ज्ञातव्य सत्य *(Truth knowable through experience)* है।

Scanned by TapScanner